श्री तत्वार्थ सूत्र जी।पंचम अध्याय। सूत्र-**16**

मोक्ष मार्गस्य नेत्तारं भेत्तारं कर्म भूभृताम।
ज्ञातारं विश्वतत्वानाम वन्दे तद्गुण लब्धये॥

Class 19

आत्मा के संकोच विस्तार स्वभाव को दीपक के उदाहरण के उदाहरण से समझिए
आचार्य उमास्वामी द्वारा विरचित तत्वार्थ सूत्र के पंचम अध्याय के सोलहवें सूत्र में कहा गया है-

प्रदेशसंहार- विसर्पाभ्यां प्रदीपवत् ॥**5.16**॥

इस सूत्र में आचार्य उमास्वामी महाराज कहते हैं जीव के प्रदेशों का संकोच और विस्तार भी होता है। जीव के प्रदेश इस लोकाकाश में रहते हैं तो कोई भी जीव होगा वह इस लोकाकाश का असंख्यात वाँ भाग जरूर ग्रहण करता है, घेरता है। जीव के लिए लोकाकाश में ग्रहण करने की शर्त अलग है और पुद्गल पदार्थों का लोकाकाश में ग्रहण करना उनके रहने की शर्त अलग है। जब पुद्गल के लिए कहा जाता है तो पुद्गल में वह एक प्रदेश को भी धारण करने वाला पुद्गल हो सकता है। लोकाकाश के दो प्रदेशों को भी धारण करने वाला कोई पुद्गल हो सकता है और वह भी संख्यात-असंख्यात प्रदेशों को धारण करने वाला भी पुद्गल हो सकता है। किन्तु जीव के विषय में ऐसा नहीं है। उसका स्वभाव है कि वह लोकाकाश के कम से कम असंख्यातवें भाग में रहेगा। लोकाकाश के असंख्यात प्रदेशों को घेरेगा और वही लोकाकाश के असंख्यात प्रदेशों को घेरते हुए कभी उसका शरीर छोटा भी होगा तो कभी उसका शरीर बड़ा भी होगा। अब जब शरीर छोटा और बड़ा होता है, तो आत्मा के प्रदेशों में भी संकोच और विस्तार होता है और इसी संकोच, विस्तार के स्वभाव को यह आत्मा का स्वभाव कहा गया। यानि जब तक यह आत्मा संसार अवस्था में है तब तक इस आत्मा के अंदर यह संकोच विस्तार नाम का स्वभाव भी बना रहता है। यह स्वभाव किस कारण से होता है? यह स्वतः स्पष्ट होता है कि जब तक आत्मा संसार में है

तब तक वह कर्म से सहित है और जब तक वह कर्म से सहित है तभी तक यह उसमें संघार और विसर्पण का स्वभाव बनता है। इसी स्वभाव को बताने के लिए यह सूत्र का अवतार हुआ है और इसी स्वभाव के माध्यम से हम यह समझ पाते हैं कि अगर कोई एक निगोद जीव भी है तो उस निगोद जीव में भी प्रदेशों की संख्या तो असंख्यात ही है और वह लोक के असंख्यातवे भाग में ही रह रहा है। किन्तु उसके अंदर प्रदेशों का संकोच इतना अधिक हो गया है कि वह हमें सबसे सूक्ष्म अवगाहना के साथ दिखाई देता है। जीवों की जो अवगाहना है वह कभी छोटी होती है, कभी बड़ी होती है और इसके पीछे का जो जीव के प्रदेशों का सिद्धांत है, वह सिद्धांत इस सूत्र में अभिव्यक्त किया गया है। इसके लिए प्रदीप का उदाहरण दिया है, दीपक का उदाहरण दिया है कि दीपक जिस तरह से अपने पात्र को प्राप्त कर लेता है वह उतने ही पात्र को प्रकाशित भी कर देता है। छोटे से डिब्बे के अंदर रखे हुए दीपक का प्रकाश उतने से डिब्बे में समा जाता है और किसी बड़ी टंकी में उस दीपक को रख दे तो उसका प्रकाश उस टंकी को भी प्रकाशित कर देता है। जीव के इसी संकोच-विस्तार स्वभाव को बताने के लिए यह सूत्र और इस सूत्र की व्याख्या से ही हम समझ सकते हैं कि निगोद जीव से लेकर के जो भी उत्कृष्ट अवगाहना तक के जीव हैं, वह सब अपने आत्म प्रदेशों का विस्तार करते हुए ही उत्कृष्ट अवगाहना को प्राप्त करते हैं। यही इस सूत्र की सबसे बड़ी महत्ता है। जिसमें जीव के स्वभाव को बताते हुए उसके संकोच-विस्तार के स्वभाव को बताते हुए जीव का शरीर के साथ में संकोच और विस्तार होना बताया गया है। शरीर का भी संकोच-विस्तार जितना होगा उसी के अनुसार जीव का भी संकोच-विस्तार इसी ढंग से होता चला जाता है। यह इस सूत्र का अभिप्राय है।

आत्म प्रदेशों का निम्नतम संकोच

इसलिए निगोद जीव की अवगाहना भी जो है कितना छोटा जीव क्यों न हो वह भी घनांगुल का असंख्यातंवा भाग बताई जाती है। यह अवगाहना उसके संघार स्वभाव होने पर भी इतनी ही रहती है, इससे ज्यादा नही होती है। अब आप पूछ सकते है ऐसा क्यों? इससे ज्यादा भी क्यों उसका संकुचन नही होता? आचार्य कहते हैं कि यह स्वभाव है कि वह संकोच इससे कम में कभी भी संभव नहीं है। जैसे कि जीव का ज्ञान है, ज्ञान कम होते-होते

एक बिल्कुल निगोद जीव का सर्वाधिक जघन्य ज्ञान होता है उतना ज्ञान उसका रह गया। बाकी के सब ज्ञान के ऊपर आवरण आ गया तो उसे नित्य उद्घाटित ज्ञान कहा जाता है, इतना ज्ञान तो रहेगा ही। अगर इतना ज्ञान नहीं रहेगा तो जीव का अस्तित्व ही नहीं रहेगा। इसी तरीके से किसी भी स्थिति से हम उसे घटाते-घटाते, संघार करते-करते जीव को अगर हम लाते हैं तो सूक्ष्म निगोद जीव की जो अवगाहना है उससे काम अवगाहना वाला जीव कभी भी उपलब्ध नहीं होता। अतः संघार इसका इतना ही हो सकता है। विसर्पण कितना हो सकता है? यह जीव अपने प्रदेशों को फैलाए तो पूरे लोकाकाश में भी अपने प्रदेशों को फैला सकता है। जो केवली समुद्रघात के माध्यम से देखने को मिलता है जानने को मिलता है। यह संघार और विसर्पण की Lower और upper limit अपने को पता होना चाहिए। expansion भी हो रहा है और उसका contraction भी हो रहा है। ये दोनों की हमको Lower और Upper limit पता होना चाहिए कि जीव इससे छोटा नहीं हो सकता और जीव इससे बड़ा नहीं हो सकता। बड़ा होते हुए भी यह जीव केवल लोकाकाश के असंख्यात जो प्रदेश हैं उन्हीं तक अपना विस्तार करता है। वहाँ तक इसका विस्तार होने पर भी इस जीव का वह स्वभाव नहीं है कि वह ऐसा ही विस्तार इसका बना रहे। न संकोच करना देखा जाए इस जीव का एक वास्तविक स्वभाव है और ना विसर्पण करना इसका कोई वास्तविक स्वभाव है। स्वभाव यदि हम कह रहे हैं तो किस अपेक्षा से कह रहे हैं? कि जब तक यह जीव कर्म के साथ में है तब तक इस का यह स्वभाव है। जीव का यह स्वभाव अपना वास्तविक परमार्थ स्वभाव नहीं है ।

व्यवहार में जीव का संकोच और विस्तार स्वभाव है

अणु गुरूदेह पमाणो जो द्रव्य संग्रह में आपने पढ़ा है- जीव अणु और गुरुदेह प्रमाण वाला हो जाता है, यह जो है व्यवहार से है और व्यवहार होने का मतलब है कि जब तक जीव का संबंध कर्म से जुड़ा हुआ है तभी तक इस तरह का उसका संकोच और विस्तार चलता है। कर्म से रहित होने पर इस जीव के अंदर यह संकोच विस्तार का स्वभाव फिर fit नहीं बैठता। इसका यह स्वभाव भी नहीं है कि यह हमेशा अपने स्वभाव में प्राप्त हो करके यह फैलता चला जाए जैसे कि आप कहें कि जीव के लिए जब तक कर्म का उदय है तब तक तो चलो जीव छोटा था बड़ा था। जैसे किसी चीज को हमने दबा कर के रखा हो और उसका

हमने वास्तविक स्वभाव प्रकट नहीं होने दिया और जैसे ही उसके ऊपर से दबाव हटा दिया या आवरण हटा दिया तो वह अपना पूरे में फैल जाता है। ऐसे ही हर जीव आत्मा को जब कर्म का अभाव हो जाता है तो पूरे लोक में फैल जाना चाहिए। पूरे लोक में उसका विस्तार हो जाना चाहिए। कोई फिर उसके लिए condition नहीं बची तो ऐसा भी कहना इसलिए उचित नहीं है क्योंकि जीव जब कर्म से अपने आपको अलग करता है, तो जिस समय पर उसका कर्म से अलग होना होता है उसी में उसका जैसा आकार होता है, वही आकार उसका हमेशा के लिए बना रह जाता है। इसे बोलते हैं- चरम शरीर से कुछ न्यून आकार हो जाना। अन्तिम जो देह है उस देह के जितने आकार है, जितनी उसकी अवगाहना है, जितनी आत्म प्रदेशों की इस लोक आकाश में उसका फैलाव है वही फैलाव उसका कुछ कम हो करके सिद्धवस्था में बना रहता है। जीव का यह जो संकोच-विस्तार पना है यह उसका निश्चय से स्वभाव नहीं है, यह जानना। यह क्या है? यह व्यवहार से है, कर्म आश्रित है। जब तक यह कर्म है तब तक यह जीव इस तरह के स्वभाव को अपनाता है और जब कर्म छूट जाते हैं तो उसका एक स्वभाव ही रह जाता है जो चरम शरीर से कुछ कम स्वभाव वाला होगा। फिर उसका संकोच-विस्तार कुछ भी नहीं होता। इसलिए जो सिद्ध होते हैं वह अपनी एक निश्चित आकृति के साथ में उनके आत्मा के प्रदेश रहते हैं। यह का बहुत बड़ा Logic है और इसको सबको ध्यान में रखना चाहिए।

जैसे मिट्टी में पानी वैसे जीव में कर्म

इसलिए आत्मा पूरे लोक में फैल करके सिद्धवस्था में नहीं रहता और इसके लिए हम समझ भी सकते हैं जैसे कोई भी चीज होती है, मान लो मिट्टी है। मिट्टी में हमने पानी मिलाया और जब तक मिट्टी में पानी रहता है तब तक मिट्टी का किसी भी तरीके से उसके shape को change कर सकते हैं। हम उसको छोटा, बड़ा, लंबा, मोटा कैसे भी बना सकते हैं। कब तक? जब तक मिट्टी में पानी है। मिट्टी में पानी होना यह उसके लिए एक क्या हो गया? ऐसे समझ लो जैसे जीव में कर्म होना। जब तक पानी है मिट्टी में तब तो मिट्टी को हम कोई भी shape दे सकते हैं। उसका संकोच-विस्तार किसी भी रूप में कर सकते हैं। अब अगर वह मिट्टी सूख गई तो क्या हो गया? पानी निकल गया, पानी से रहित मिट्टी हो गई। अब क्या होगा? वह जिस shape में था वही shape उसका बना रह

जाएगा। इसी तरीके से जब तक जीव कर्म के कारण से संसार में है, कभी सूक्ष्म निगोदिया जीव बन जाएगा, कभी एक इन्द्रिय वनस्पतिकायिक बन जाएगा, कभी त्रस बन जाएगा दो इंद्रिय, चार इन्द्रिय, पंच इंद्रिय, मनुष्य कभी कर्मभूमि का, कभी भोग भूमि का, कभी नारकी, ये तमाम तरह की अपनी संकोच-विस्तार स्वभाव से यह अपने शरीर की घटा-बड़ी करता रहेगा। कब तक? जब तक इसमें कर्म है। इसमें जो यह संकोच-विस्तार पना आ रहा है किसके कारण से आ रहा है? कर्म के कारण से आ रहा है।

यद्यपि यहाँ कुछ लिखा नहीं है लेकिन समझना अपना काम है और जो आचार्यों ने समझाया है उसी के अनुसार अपने को समझना है कि प्रदेशों का जो संघार और विसर्पण हो रहा है, उसी के कारण से इसको पिछले सूत्र के साथ जोड़ना है कि असंख्य भाग को आदि करके मतलब लोकाकाश का एक असंख्यातवां भाग ले करके और फिर आदि में जितने विकल्प उसके बन सकते हैं, उन सब विकल्पों को आप बना सकते हैं यानी जितना उसका शरीर बड़े से बड़ा हो सकता है, उतना आप उसका विस्तार करके शरीर बना सकते हैं। यह इसका जो छोटे से बड़े शरीर के रुप में होना, एक लोक का असंख्यातवां भाग घेरते हुए उसके अनेक लोक के असंख्यातवें भागों को घेर लेना, यह सब जो उसके अंदर संकोच-विस्तार स्वभाव के कारण से आ रहा है। इसके लिए यहाँ पर यह सूत्र दिया गया है कि ऐसा क्यों होता है जीव में कि वह कभी छोटा और कभी बड़ा अपना शरीर बना लेता है। यह संकोच-विस्तार उसके अपने कर्मों के कारण से है जिसमें विशेष रूप से उसका शरीर नामकर्म हेतु होता है। इसी के कारण से यह शरीर को अब बनाए भी रखता है और जितना जिसका शरीर होता है उतना उसके अनुसार उसकी अवगाहना बन जाती है।

सिद्धों में संकोच और विस्तार नहीं होता है

यह जो विस्तार और संकोच का स्वभाव है यह सिद्धों में क्यों नहीं है? और संसारी जीवों में क्यों है? इसका स्पष्टीकरण आपके दिमाग में अच्छे ढंग से हो जाना चाहिए। इसलिए यह सब बताया जा रहा है। सिद्धों में संकोच-विस्तार नहीं है। सिद्ध में तो जैसी आकृति बन गई, वह बन गई और वह कैसी बनेगी? जैसी चरम शरीर था, अंतिम शरीर जिससे वह

सिद्ध हुआ है उसमें से कर्म निकलने के बाद में जो आकृति उसी शरीर के आकार की आत्मा की बन गई तो वह बनी रहेगी ठीक वैसे ही जैसे ही मिट्टी का और जल का उदाहरण दिया। जल निकल गया तो अब मिट्टी की आकृति जैसी बनी है वह वैसी बनी रहेगी। इसी तरीके से यह एक आकृति जो बनी रहती है, यह सिद्धों की बनी रहती है। सिद्धों की आकृति में कोई परिवर्तन नहीं होता। सिद्धों के आत्म प्रदेशों में हलन-चलन भी नहीं होता। सिद्धों के सभी प्रदेश अचल होते हैं और सिद्धों के जो आत्मा के प्रदेश हैं, उनमें संकोच-विस्तार भी नहीं होता। यह संकोच-विस्तार स्वभाव भी छूट जाता है जब वह योग से रहित हो जाता है, अयोग केवली हो जाता है तभी इसका यह संकोच विस्तार स्वभाव भी छूट जाता है। उसी समय पर इस आत्मा की अपनी जो shape बननी होती है वह बन जाती है और वही shape उसकी फिर सिद्ध अवस्था में भी अनंत काल तक बनी रहती है। इस तरह की यह प्रक्रिया जो यहाँ आत्मा के प्रदेशों में संकोच-विस्तार को लिए हुए होती है, उसको संसार अवस्था में भी घटित करके अच्छे से जानना और जो सिद्ध अवस्था में होती है उसको भी अच्छे से जानना। कैसे?

दीपक के उदाहरण से संकोच और विस्तार को समझते है

उदाहरण भी दिया गया है- 'प्रदीपवत' अब यह उदाहरण भी किसके लिए है? संकोच-विस्तार स्वभाव को दिखाने के लिए है, यह उदाहरण संसार अवस्था के लिए ही है। जीव छोटा क्यों हो गया? बड़ा क्यों हो गया? दीपक का उदाहरण दे करके बताया है कि जैसे दीपक अगर किसी छोटे से pot में रखा होता है तो उसी को केवल वह lighted करता है और अगर उससे थोड़ा बड़े कमरे में भी रख दिया जाए या किसी बड़े बर्तन में रख दिया जाए तो उसका प्रकाश उसमें भी भर जाता है, उसको प्रकाशित कर देता है। जिस तरह से दीपक का प्रकाश एक होकर के भी अलग-अलग आधारों के माध्यम से अलग-अलग उसके सामने आवरण करने वाले जो पदार्थ हैं उनकी अवगाहना बढ़ जाने से दीपक जो है उसका प्रकाश उसी रूप में फैल जाता है, वैसे ही यहाँ जानना कि शरीर नामकर्म के कारण से जैसा इसको शरीर मिलता है वैसा ही यह जीव छोटा और बड़ा हो जाता है। अब आप कहोगे महाराज! एक-दूसरे को देखें तो छोटे-बड़े जीव दिखाई तो देते हैं,

Class 20

कोई बड़ा है, कोई मोटा है, कोई पतला है। क्या कभी अपना भी शरीर कभी छोटा और बड़ा होता है। अपनी भी आत्मा कभी संकोच-विस्तार को लेकर के प्राप्त हो रही है कि नहीं हो रही है। आपको खुद अपने में feel नहीं हो रहा है कि हमें दूसरों को देखना पड़ेगा। हम भी तो खुद अपने लिए भी देख सकते हैं। जब बच्चा जन्म लेता है तो कितना सा होता है तो उसकी आत्मा के प्रदेश में ऐसा तो नहीं कि पहले बाहर फैल रहे हो। उसी के अनुसार शरीर उसका बढ़ता चला जा रहा हो। जब जन्म लिया है तब उसके आत्मा के प्रदेश और जन्म लेने से पहले गर्भ में देखो तो उसकी आत्मा के प्रदेश कैसे बिल्कुल एक छोटे से ढेला के आकार में, गेंद के आकार में होंगे और फिर वह अपना विस्तार करते करते मतलब जन्म लेने लायक हुआ और जन्म लेने के बाद में फिर वह बालपन से युवा बन करके उसकी height बढ़ती गई तो यह सब क्या हो रहा है? आखिर शरीर बढ़ रहा है, शरीर बढ़ रहा है यह तो कहते हो, यह तो कभी नहीं बोला आपने कि आत्मा के प्रदेशों का भी विस्तार हो रहा है। अब शरीर को ही जानने वाले, शरीर पर ही दृष्टि रखने वाले देह आश्रित जीवों को देह का ही ज्ञान होता है, शरीर का का ही ज्ञान होता है। अब अगर आपको यह ज्ञान हो गया है तो अपने बच्चें को भी बढ़ता हुआ देख कर के आप कभी यह assume कर सकते हैं कि जिस तरह से इसकी height बढ़ रही है, इसकी जो है body की health बढ़ रही है उसी तरीके से उसकी आत्मा के प्रदेश भी उसमें expand हो रहे हैं। समझ आ रहा है न? यह अगर आप feeling करेंगे तो यह दिखता है। यह चीज कोई जीव के संबंध वाली जो चीज है, वह तो अपने अनुभव में भी आती हैं और यह स्पष्ट दिखाई दे रहा है। वही शरीर अब मान लो छोटे से बड़ा हो गया।

thyroid जैसी बीमारी से आत्मप्रदेशों का संकुचन विस्तार समझ सकते हैं

अब कोई व्यक्ति ऐसा होता है कि पहले तो जो है बहुत पतला सा और छोटा सा हो, एकदम से उसके शरीर में कोई कुछ भी हो जाता है, फूल जाता है, फूलता ही चला जाता है, मोटा ही होता चला जाता है। अब उसके शरीर में सब में आत्मा के प्रदेश को पहुँचेंगे न, जहाँ-जहाँ तक वह फूल रहा है। आत्मा के ही प्रदेशों का ही विस्तार हो रहा है। फिर मान लो

क्या हुआ? यह एक thyroid की problem होती है न! thyroid की problem में 2 तरीके की यह विस्तार और संकोच दोनों चलते हैं। दोनों तरीके की thyroid की problem होती है। किसी problem में ऐसा होता है कि शरीर बिल्कुल सूखता जाता है और कभी-कभी ऐसे भी problem होती है जिसमें शरीर फैलता चला जाता है। thyroid में दोनों ही तरीके की बीमारियाँ होती है। अब मान लो किसी का शरीर फैल गया। अब उसके लिए कभी ऐसा हुआ कोई रोग हो गया या कोई जो है उसके लिए और कोई इस तरीके की आपत्ति आ गई कि अब उसका शरीर बिल्कुल जो है झड़ना मतलब घटना शुरू हो गया तो क्या होगा? अब उसके शरीर के आत्मा के प्रवेश पहले फैल गए थे। अब वे धीरे-धीरे फिर स्वभाव में आ जाएँगे, वैसे ही संकोच को प्राप्त हो जाएँगे। यह संकोच-विस्तार तो हम यहाँ पर भी खुद अपने शरीर में भी देख रहे हैं। हमें इसमें कोई बहुत ऐसा समझने की जरूरत नहीं है कि यह तो कोई बहुत अदृश्य चीज हो। धर्म-अधर्म के विषय जैसी चीज तो नहीं है, जीव द्रव्य तो अपनी अनुभूति की चीज है और जो सबके लिए भी दिख रहा है, वह अपने लिए भी देख रहा है। देखो! वही यहाँ बताया जा रहा है कि दीपक के प्रकाश की तरह आत्मा के अन्दर इन प्रदेशों का फैलाव और संकुचन इस तरह से होता रहता है और यह अपने लिए बिल्कुल प्रत्यक्ष प्रमाण से भी सिद्ध होता है।

धर्म द्रव्य और अधर्म द्रव्य किस प्रकार उपकार करते है **?**

अब आगे कहते हैं

गति-स्थित्युपग्रहौ धर्मा-धर्मयो-रूपकारः॥**5.17**॥

देखो! अब यहाँ से कुछ यह बताने का प्रकरण शुरू होता है कि यह धर्म-अधर्म द्रव्य है, यह तो आपने बता दिया, कितने प्रदेशी हैं यह भी आपने बता दिया, कैसे रहते हैं लोकाकाश में यह भी आपने बता दिया। यह तो बताओ इनका कुछ मतलब भी है कि नहीं यह क्या हमारे लिए उपकार करते हैं? उसके लिए सूत्र आया है कि यह धर्म और अधर्म द्रव्य का उपकार है कि वह गति और स्थिति में उपग्रह करते हैं। उपग्रह मतलब उपकार करते हैं 'उपग्रह्यते इति उपग्रहः' और उपग्रह को ही उपकार कहते हैं यानी गति में धर्म द्रव्य उपकार करता है और स्थिति में अधर्म द्रव्य उपकार करता है। अब यह धर्म और अधर्म द्रव्य का उपकार

यहाँ पर अलग-अलग लगाना है, यह द्विवचन का जो उपयोग किया है विभक्ति के साथ में वह इसीलिए किया है कि धर्म द्रव्य का उपकार गति में है और अधर्म द्रव्य का उपकार स्थिति में है। इन दोनों द्रव्यों के ये उपकार होने के कारण से ही यह जो गतिमान जीव और पुद्गल द्रव्य होते हैं यह गति और स्थिति को प्राप्त होते हैं। अब आपके मन में प्रश्न भी आ सकता है कि जीव और पुद्गल तो अपने ही निमित्त से या अपनी स्वशक्ति से गति करते रहते हैं। हमें इसमें धर्म और अधर्म का क्या उपकार देखने को मिलता है। इसमें यह जानना कोई भी कार्य होता है तो उस कार्य के पीछे अनेक कारण होते हैं। क्या कहा? कोई भी कार्य घटित होता है तो उसके पीछे अनेक कारण होते हैं। एक कारण से कोई कार्य नहीं होता। अनेक कारणों से एक कार्य संपादित होता है।

रोटी बनाने में कौन-कौन उपकारी

जैसे आप मान लो एक रोटी भी बनाते हैं तो उसमें कितने कारण लगते हैं। आटा लगता है, पानी लगता है, अग्नि लगती है, बर्तन लगते हैं, तमाम चीजें लगती हैं फिर उसके बाद में अपना दिमाग भी लगता है। आदमी भी लगता है कि नहीं लगता? उसका दिमाग भी न लगेगा तो फिर फिर रोटी कैसे बनेगी? इतने कारण लगने पर एक रोटी बनती है, इतने एक कार्य होता है। यह तो आपको एक example दिया जा रहा है। दुनिया का कोई भी कार्य देखोगे तो अनेक कारणों से ही होता है। अब उसमें कुछ कारण तो ऐसे होते हैं जो बिल्कुल common होते हैं और कुछ कारण ऐसे होते हैं जो बिल्कुल अपने को specific दिखाई देते हैं। जो common होते हैं, उन common कारणों को हम महत्व नहीं देते हैं। मान लो जब हम पर रोटी बना रहे हैं तो उस समय पर भी हवा का कोई उपयोग है कि नहीं? हवा भी है, आकाश भी है, इसका भी कोई रोटी बनाने में उपयोग है कि नहीं, इसको हम कभी कारण में नहीं गिनेंगे। जबकि रोटी बनाने के लिए भी हवा की जरूरत है, अग्नि के लिए भी हवा की जरूरत है और रोटी को अच्छे ढंग से जब हम क्या करते हैं? सेंकते हैं और जब वह बनती है तो उसमें भी जो है फुलाव जब आ जाता है तो वह हवा के बिना नहीं आएगा और उसके बिना रोटी अच्छी नहीं बनेगी। लेकिन हम कभी हवा को कारण बोलते हैं? जो साधारण कारण होते हैं, उनको हम महत्व नहीं देते हैं लेकिन वे कारण तो रहते हैं। वातावरण भी एक कारण होता है कि नहीं? आप रोटी तो बना रहे हो। वहाँ का temperature,

atmosphere किस तरीके का होना चाहिए? यह आपको इसलिए feel नहीं होता क्योंकि आपको यहाँ पर एक normal temperature हमेशा बना रहता है। उन ठंडे देशों में चले जाओ जहाँ पर minus 40 degree temperature होता है। वहाँ पर रोटी बना कर देख लो आप खुले में कैसे बनती है? ये सब चीजें भी मायने रखती हैं कहने का मतलब यह है।

धर्म और अधर्म द्रव्य का योगदान

उसी तरीके से धर्म द्रव्य, अधर्म द्रव्य यह भी कारण है लेकिन वह कारण इसलिए हमको समझ नहीं आते क्योंकि वह एक तुम्हारे लिए अदृश्य हैं, अमूर्तिक हैं। इस कारण से उनका हमें कोई भी योगदान समझ में नहीं आता। लेकिन जो द्रव्य होते हैं उन द्रव्यों के भी योगदान हर कार्य में रहते हैं और वही योगदान बताने के लिए यहाँ पर यह सूत्र आया है कि आप जाने कि गति और स्थिति मतलब चलने में धर्म और रुकने में अधर्म द्रव्य भी सहायक बने रहते हैं। यह एक तरीके का कहना चाहिए जैसे आप के लिए धरती आधार है, आप कहीं पर भी चलते हैं तो जमीन आपके पास होनी ही चाहिए। आपको महसूस नहीं होता कि मैं जमीन पर बैठ रहा हूँ, मैं जमीन पर चल रहा हूँ कि मैं जमीन पर खड़ा हो रहा हूँ लेकिन जमीन के बिना कुछ नहीं होता। धरती आधार है, धरती का आपको कभी भी एक महसूस इसलिए नहीं होता क्योंकि वह आपके लिए common factor है। इसी तरीके से कोई भी क्रिया होगी तो उसमें धर्म द्रव्य हर जगह फैला हुआ है। अब वह धरती यह नहीं कहेगी कि यहाँ बैठे-बैठे बहुत देर हो गई है, चलो! उठो या तुम इतनी तेज क्यों चल रहे हो? मेरे ऊपर इतना कूद क्यों रहे हो? धीमे चलो, बहुत चल लिए हो, बैठ जाओ। धरती यह तो कुछ नहीं कहेगी। जब आपको बैठना हो तो बैठ जाओ, चलना है तो चलने लग जाओ, दौड़ना तो दौड़ने लग जाओ, उठना है तो उठ जाओ। जो कुछ भी करना है वह आपको करना है लेकिन धरती क्या है? एक सामान्य कारण है। इसी तरीके से पुरे लोकाकाश में धर्म द्रव्य, अधर्म द्रव्य भी यह फैले हुए द्रव्य हैं। ये इसी तरीके से हमारे लिए helpful होते हैं और इनके द्वारा कोई भी कुछ भी अलग से इनके द्वारा कोई प्रोत्साहन नहीं दिया जाता, प्रेरणा नहीं दी जाती। इसलिए इनको प्रेरक निमित्त नहीं कहा गया, इनको उदासीन निमित्त कहा गया।

धर्म और अधर्म द्रव्य पर श्रद्धान करना चाहिए

दो प्रकार के कारण होते हैं या निमित्त होते हैं- एक उदासीन निमित्त और एक प्रेरक निमित्त। उदासीन निमित्त तो वे होते हैं- चीजें हैं, आपको use करना है तो आपके use करने में आ जाएँगी। आप बस अपना मतलब अपनी एक प्रवृत्ति बनाओ और उन चीजों का use करो तो ये कहलाते हैं- उदासीन कारण। प्रेरक कारण क्या होते हैं? वह आपको मतलब एक तरीके से inspire करते हैं कि आप ऐसा करो। जैसे गुरु होते हैं आपसे कहेंगे पढ़ो तो आप पढ़ते हो। ऐसे पढ़ो, ये चीजें याद करो, इन्हें सीखो तो आप ऐसा करते हो। यह व्रत लो, यह छोड़ो, यह नहीं करो, यह करो तो यह क्या हो गया? प्रेरक निमित्त हो गया। यह धर्म, अधर्म जो है क्या है? उदासीन निमित्त हैं, बिल्कुल natural cause हैं। इनके माध्यम से कार्य तो होता है लेकिन ये बिल्कुल neutral रहते हैं। जैसा भी इनका आपको use करना है आप करो। misuse करना है तो misuse करो, use करना है तो use करो। किसी purpose से कहीं कोई गति करना तो करो और without purpose भी आपको कहीं पर भी कोई walking करना है, movement करना तो वह भी करो, इन्हें कोई आपत्ति नहीं है। यह तो एक फैले हुई चीजें हैं तो इस तरीके से हम इनको जाने और इनका श्रद्धान भी करें।

हमें सिद्धांत को मानना चाहिए

श्रद्धा भी करें जब हम चलते हैं तो केवल अपने हाथ पैरों को न देखें, अगर कोई पूछे आप किस कारण से चलते हो? आप कहते हो मैं पैर उठाता हूँ तो चलता हूँ, मेरे पैरों में दम है इसलिए चलता हूँ। जो कारण आप बताओ उनमें एक कारण यह भी बताओ कि यहाँ पर धर्म द्रव्य फैला हुआ है इस कारण से मैं चल पाता हूँ। यहाँ पर अधर्म द्रव्य है इसलिए मैं बैठ पाता हूँ कि वह जमीन है, इसलिए बैठ जाता हूँ ऐसा नहीं है। अधर्म द्रव्य भी है जो मेरे बैठने में सहायक होता है तो ऐसी अपने एक language में लाओ तब जो है लोगों को इसकी जानकारी होगी और समझ में आएगा कि हाँ! वास्तव में यह भी एक कोई सिद्धांत है और जिसको यह लोग मानते हैं तो उस सिद्धांत का भी प्रचार अपने आप होगा। Modern science भी इस चीज को मानती है कि कोई भी तरीके के जो मतलब द्रव्य हैं या पदार्थ हैं इस संसार में, उनके लिए भी कोई न कोई गति में सहायक और स्थिति में

सहायक कोई द्रव्य होता है और वे इसको एक ether का नाम देते हैं, एक ether द्रव्य मानते हैं। वे जो भी मानते हो तो वे कम से कम ether कह रहे हैं तो आप उसको क्या बोलो? धर्म द्रव्य और अधर्म द्रव्य। कभी न कभी तो बोलना सीखना चाहिए, कभी न कभी तो बताना चाहिए कि कुछ कारण जो हमें दिखाई दे रहे हैं, वे भी हैं और कुछ कारण जो हमें नहीं भी दिखाई दे रहे है लेकिन हमको support कर रहे हैं, उनका भी हम आदर करें उनका भी श्रद्धान लाएँ तो यह सम्यग्दर्शन के लिए कारण बनेगा। किसके लिए? अब आप कहोगे यह कैसे कारण बनेगा? छह द्रव्यों का श्रद्धान ही तो कई जगह सम्यग्दर्शन कहा गया है। किसके लिए श्रद्धान, किसका करना है? छह द्रव्य का। जिसका श्रद्धान करना है, उसका हमें कुछ गुणगान भी तो करना है कि नहीं करना है। उसकी कभी बातचीत भी तो करना, उसका कभी कोई आदर भी तो करना है। उसके बारे में भी तो हमें इतना भाव आना चाहिए कि अगर हम किसी को बता रहे हैं तो हमें यह संकोच न हो कि भाई! यह क्या बोल रहा है? अरे! वह जो सोचे, सोचता रहे, हमें तो बोलना है। इसका कोई use नहीं करता। आप लोग इसको use करना शुरू करो। आप online सब कुछ देख रहे हो। आपकी voice भी वहाँ से यहाँ आ रही है, कोई भी message वहाँ से यहाँ आ रहा है। किसके through आ रहा है?

Class 21

Mobile नेटवर्क भी धर्म अधर्म के कारण है

आप तो कर रहे हो इसलिए उसके माध्यम से आ रहा है। जो भी आपके लिए waves हैं, उनके conection हैं, इसके कारण से आ रहा है। लेकिन इसके पीछे भी एक और secret एक और जो है invisible cause है, उसको भी आप अपने विश्वास में लाओ। उसका भी कभी-कभी अपने मुँह से वर्णन किया करो कि देखो! धर्म द्रव्य का कितना उपकार है? कि हमारा message online न जाने कहाँ से, कर्नाटक से, पुणे से, महाराष्ट्र से और तुरंत वह क्षण भर में यहाँ आ जाता है। यह भी बोलना सीखो। फिर वह message जाकर हमारे mobile में वह paste करता है। जो science है वह तो है ही लेकिन एक और science है

जिसको कि only we know. Scientist भी जिसको नहीं जानते हैं तो उसके कारण से भी यह उस mobile में stay रहता है, उसका नाम है- अधर्म द्रव्य। आप इन चीजों का उपयोग करें। अन्यथा तो ये चीजें आपको कहेंगे यह तो बहुत बोरियत वाली चीजें हैं और यह तो आपको कोई भी काम की नहीं लगेगी तो ऐसा नहीं है काम की नहीं है। जो चीजों का हमारे लिए किसी भी तरीके से उपयोग है लेकिन हम उसका उपयोग स्वीकार नहीं कर रहे हैं तो यह भी तो अपनी एक तरीके की कृतघ्नता है। जैसे हम यहाँ पर पंच भूतों का या पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु का उपकार मानते हैं क्या हमें धर्म द्रव्य का उपकार नहीं मानना चाहिए?

धर्म और अधर्म द्रव्य का उपकार भी मानना चाहिए

आखिर उपकारी ही शब्द दिया है। 'धर्मा-धर्मयो-रूपकारः' जीव का तो उपकर मान रहे हो हाँ! उसने हमारे लिए यह कर दिया, वह कर दिया, कभी इसका भी तो उपकार मानो। इनका उपकार मानने से क्या होगा? आपके अन्दर श्रद्धा बनेगी। किस बात की? क्योंकि इनका उपकार वही मानेगा जो सर्वज्ञ की बात मानता है, जो सर्वज्ञता को मानता है। आपकी श्रद्धा बनी सर्वज्ञता के लिए और सर्वज्ञता के ऊपर अगर आपका इस तरीके का श्रद्धान बनेगा तो यह छह द्रव्य आपके सम्यग्दर्शन के object बन जाते हैं। इसीलिए कहा है- छह द्रव्यों की श्रद्धा से सम्यग्दर्शन होता है। सात तत्त्व का गुणगान तो बहुत होता है। छह द्रव्य में कोई गुणगान नहीं करते हैं लोग और अगर गुणगान भी करना है तो सिर्फ जीव द्रव्य का ही करते हैं। इनका भी हमें यथोचित गुणगान करना चाहिए। ऐसा नहीं कि एक लाइन में पढ़ कर के निकल गये कि धर्म द्रव्य का उपकार गति में सहायक है, अधर्म द्रव्य का उपकार स्थिति में सहायक है। बस दो उदाहरण याद कर लिए जैसे मछली पानी में और पेड़ के नीचे पथिक है। समझ आ रहा है? हम इसका हर जगह पर एक इसकी presence जो है, वह feel करें और इसको भी एक neutral जो cause होता है किसी भी effect के लिए उसमें हम इसको include करें। यह कहने का मतलब है। ये चीजें जब हम अपनी practical life में लाएँगे तो इन चीजों पर हमारा श्रद्धान भी बढ़ेगा और दूसरों को भी इसकी knowledge होगी। आगे देखो क्या कहते हैं?-

आकाश द्रव्य का उपकार अवगाह देना है

आकाशस्या - वगाहः ॥**18**॥

अब कहते हैं कि आकाश द्रव्य का उपकार, आकाशस्या, अब उपकार शब्द पीछे से लगा लेना। तो आकाश द्रव्य का उपकार क्या है? अवगाह, अवगाह देना यानि यह आकाश द्रव्य का ही उपकार है जो सभी द्रव्यों को रहने के लिए space दे रहा है। Spacetime एक theory है, Modern science भी इसको मान रही है। इसको क्या बोलते हैं? एक space time theory है तो space को महत्व दिया जा रहा है लेकिन उसको time के साथ जोड़ कर दिया जाता है। जबकि space अलग चीज है और time अलग चीज है। जो Modern theory है, Modern science है वह space और time को connect करके किसी भी चीज का interpretation कर पाती है लेकिन यहाँ आचार्य हमको बता रहे हैं कि space is a separate substance and time is a different substance. वह बिल्कुल अपने आप में उससे भिन्न पदार्थ हैं। जो यह theory बन रही है वह कहीं न कहीं इन सब चीजों को relate करके बन रही हैं लेकिन हमें इनकी knowledge इतनी वास्तविक रूप में होनी चाहिए कि अगर कहीं पर कोई theory हमारे सामने आती है तो हमें पता पड़ जाए कि इस theory में इनको इतना ही knowledge है, इसकी और जो knowledge होनी थी वह इनको नहीं है, वह हमको है।

अवगाहनत्व गुण आकाश में मुख्य रूप से है

यह आकाश का अवगाह गुण ही वह गुण है, जिसके कारण से किसी भी क्षेत्र में अगर कहीं पर कोई भी particle है तो उसकी energy भी है और उस particle की जो energy होती है, उसको ही जो है वह quantum physics के रूप में quanta field के रूप में जाना जाता है तो पूरे universe के अंदर यह पूरे cosmos को वैज्ञानिकों ने सिद्ध कर दिया है कि यह quantum field है। quantum field कैसे हो गया? हर जगह पर कोई न कोई पदार्थ है और उस पदार्थ की अपनी कोई न कोई energy है, जो energy आपके लिए catch हो रही है वह ठीक है और जो आपके किसी भी तरीके से catch करने में नहीं आ रही है, वह भी energy है। उस energy को आपको समझना है जो energy हमारे लिए feel तो होती है

लेकिन वह हमारे पकड़ में नहीं आती है। काम तो होता है उससे लेकिन उसे हम देख नहीं पाते, बता नहीं पाते। आकाश द्रव्य भी एक ऐसा ही द्रव्य है, जिसने सभी द्रव्यों को अपने में स्थान दे रखा है और उस अवगाहनत्व गुण के कारण से ही इस आकाश के अंदर यह सभी द्रव्य यथास्थान अपने-अपने स्वरूप में हैं और सब द्रव्य एक साथ भी हैं, एक दूसरे से मिले हुए भी हैं लेकिन फिर भी कोई भी द्रव्य किसी भी द्रव्य में मिल करके भी अपने स्वभाव को नहीं छोड़ता है। क्यों नहीं छोड़ता? कोई भी द्रव्य के स्वभाव से छेड़खानी नहीं करता। इसी को बोलते हैं कि एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ नहीं करता। इसका मतलब सिर्फ और सिर्फ इतना ही है कि एक द्रव्य कभी दूसरे द्रव्य के स्वभाव को change नहीं करता। लेकिन एक द्रव्य दूसरे द्रव्य के लिए कुछ नहीं करता ऐसा एकांत बनाएँगे तो फिर हम एकांत मिथ्या दृष्टि हो जाएँगे। यह अनेकांत धर्म है। यहाँ पर हमें उपकार भी स्वीकार करना है, उस द्रव्य के अस्तित्व को भी स्वीकार करना है और उस द्रव्य का जो कार्य दूसरे द्रव्य के ऊपर हो रहा है, उसको भी मानना है। आखिर यह द्रव्य अवगाह दे रहा है तो क्या अपने आकाश द्रव्य को अवगाह दे रहा है? कि अन्य द्रव्यों को अवगाह दे रहा है। अन्य द्रव्यों के स्वभाव को वैसा बनाए रख कर के भी उनके ऊपर उपकारी तो हो रहा है, उनके लिए कुछ कर तो रहा है अन्यथा ये द्रव्य कहाँ रहते? धर्म द्रव्य, अधर्म द्रव्य भी हमारे ऊपर कुछ उपकार कर रहा है।

द्रव्यों के उपकार को अनेकांत दृष्टिकोण से समझिए

एक द्रव्य का दूसरे द्रव्य के ऊपर उपकार भी स्वीकार करना पड़ेगा। हम यह तो बहुत ज्यादा गाना गाते हैं, एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ नहीं करता, कुछ नहीं करता लेकिन एक द्रव्य का अगर दूसरे द्रव्य का कुछ नहीं करता तो सिर्फ उसका मतलब इतना ही है कि वह उसके किसी भी तरीके के क्रियाकलाप में बाधा नहीं बनता। करके भी वह कुछ भी आपकी तरह अहसान नहीं जता रहा। कितने बड़े-बड़े द्रव्य हैं, कितने बड़े-बड़े काम कर रहे हैं और कितना हमारे ऊपर उपग्रह कर रहे हैं, उपकार कर रहे हैं लेकिन फिर भी यह बिल्कुल silent है। आपको बोलने को मुँह मिला है तो आप कुछ भी बोलते रहो। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ नहीं करता तो यह भी तो देखो कि यह अनेकांत धर्म के अनुसार एक द्रव्य दूसरे द्रव्य के स्वभाव को नहीं बदल रहा है लेकिन एक द्रव्य दूसरे द्रव्य के लिए कितना

सहयोगी बन रहा है। आकाश के बिना इन द्रव्यों का अवगाहन नहीं हो सकता। धर्म-अधर्म के बिना इनकी गति स्थिति नहीं बन सकती, काल के बिना इनके परिणमन नहीं हो सकते। यह सब एक द्रव्य के उपकार दूसरे द्रव्यों के ऊपर हैं और इस उपकार को अगर हम मानेंगे तभी हम अनेकांत वादी कहलायेंगे। अनेकांतिक दृष्टिकोण के जैन व्यक्ति कहलाएँगे अन्यथा आप एकांतिक दृष्टिकोण के हो जाएँगे। यह गाना हमें हमेशा नहीं गाना चाहिए कि एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ नहीं करता। आजकल बहुत लोगों के मुँह से जो कुछ भी नहीं जानते जैन धर्म की A,B,C,D और गाना शुरू कर देते हैं- एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ नहीं करता। ऐसे लोगों से थोड़ा सा अपने को क्या करना है? avoide करना है। या तो उन्हें अनेकांत धर्म का ज्ञान नहीं है इसलिए केवल एकांत की बातें करते रहते हैं। हमें सिद्धांत के अनुसार देखें तो इन सब सूत्रों का आदर करना है और इन सब सूत्रों के अनुसार हमें अनेकांत धर्म को स्वीकार करके अपने दिमाग में द्रव्यार्थिक नय का भी उतना ही महत्व देना है जितना पर्यायार्थिक नय का महत्व होता है। हर इन दोनों नयो में गौण और मुख्यता के माध्यम से ही द्रव्य का बखान किया जाता है।

द्रव्यार्थिक नय हर द्रव्य अपने स्वभाव में है

देखो! द्रव्यार्थिक नय जब मुख्य होता है तो क्या कहा जाएगा? हर द्रव्य अपना अपने स्वभाव में है, कोई किसी को अवगाहन नहीं दे रहा है। आकाश अपने स्वभाव में है, जीव द्रव्य अपने स्वभाव में है। जीव द्रव्य के अपने प्रदेश हैं, अजीव द्रव्य जो पुद्गल है उसके अपने प्रदेश हैं- संख्यात-असंख्यात वह अपने में अवगाहन कर रहा है- एक परमाणु में, दो परमाणु में या 10 परमाणु में वह सब उनकी अवगाहना अपने में चल रही है। कोई भी द्रव्य है, अपने-अपने में अवगाहना कर रहा है। अगर मान लो सिद्ध भगवान है, वह भी अपने में ही अवगाहित हो रहे हैं, जितनी उनकी अवगाहना बन गई उसमें है। आकाश क्या कर रहा है? यह द्रव्यार्थिक नय कहलाता है। द्रव्यार्थिक नय से केवल द्रव्य को देखो। द्रव्य के स्वभाव को देखो। द्रव्यार्थिक नय जब मुख्य हो जाता है तो पर्यायर्थिकनय गौण हो जाता है। यह अनेकांत का सिद्धांत है। आपकी दृष्टि में क्या मुख्य हो गया? द्रव्यार्थिक नय। जब द्रव्यार्थिक नय से देखोगे तो सब द्रव्य अपने-अपने स्वभाव में अवगाहित हैं। अपने-अपने में अवगाहना कर रहे हैं, कोई किसी में नहीं रहता, सब अपने-अपने में रह रहे

हैं। किस अपेक्षा से? द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा से। ठीक है न! अब हमने देखा आकाश द्रव्य उसको अवगाहित कर रहा है, पुद्गल के एक परमाणु में अनेक परमाणु अवगाहित हो रहे हैं। हम भी पुद्गल को अपने में अवगाहित कर रहे हैं। पुद्गल अपने में जीव को अवगाहित किये जा रहा है। ये सब एक दूसरे में भी क्या कर रहे हैं? अवगाहना एक दूसरे को स्थान दे रहे हैं, एक दूसरे में समाहित हो रहे हैं और उपकार भी कर रहे हैं।

भोजन का उदाहरण

इतना सारा आप भोजन करते हो कहाँ चला जाता है? कहाँ चला जाता है? कहाँ अवगाहित हो जाता है? शरीर वैसा का वैसा ही बना रहता है। रोजाना खाते रहते हो, बोरे के बोरे खाली हो जाते हैं और शरीर वैसा का वैसा ही बना रहता है और कहते हैं कि एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ नहीं करता। इसलिए यह अवगाहना, यह अवगाहत, यह उपकार एक द्रव्य का दूसरे द्रव्य पर हो रहा है तभी तो शरीर टिका हुआ है, अन्य का उपकार नहीं होगा शरीर पर तो शरीर नहीं टिकेगा। शरीर का उपकार जीव पर नहीं होगा तो जीव नहीं टिकेगा। शरीर के कारण से जीव टिका हुआ है। शरीर टिक रहा है, तो जीव टिक रहा है। शरीर मिटा तो जीव गया। यह उपकार ही तो है। आगे बताने वाले हैं यह सब पुद्गल का उपकार होने वाला है तो इसलिए हमें यह ध्यान में रखना है कि पर्यायार्थिकनय की अपेक्षा से एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को अवगाहित करता है। पर्यायार्थिक नय की अपेक्षा से एक द्रव्य दूसरे द्रव्य की गति में सहायक होता है, स्थिति में सहायक होता है। लेकिन द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा से हर द्रव्य अपने में गति करता है, अपने में स्थित होता है, अपने में अवगाहित होता है, अपने में स्वभाव में रहता है। यह दोनों नयो से प्ररूपणा करना सीखो। एक नय की प्ररूपणा अगर आप अति के साथ करते हैं तो आप एकांत मिथ्यात्व की ओर समाज को ले जाने वाले लोग कहलाएँगे। इस चीज को समझे इसलिए हमें हमेशा जो चीज जैसी है, उसके यथार्थ को स्वीकार करना भी चाहिए और उसी तरीके से हमें दूसरों को बताना भी चाहिए। आगे जो अच्छे उपकार हैं, वह कल से शुरू होंगे जो आपके काम के हैं। यह जो उपकार है, यह तो शायद अभी आपको कुछ समझ आए हो या कुछ अभी कम भी आए हैं तो कोई बात नहीं कल से देखते हैं।